इकाई 28 प्रकार्यवाद और सामाजिक परिवर्तन - पार्सन्स

इकाई की रूपरेखा

28.0 उद्देश्य

28.1 प्रस्तावना

28.2 पार्सन्स की प्रकार्यवाद की अवधारणा

28.3 प्रकार्यवाद और सामाजिक परिवर्तन

28.4 सामाजिक प्रणालियों के भीतर परिवर्तन

28.4.1 परिवर्तन के लिए दबाव पैदा करने वाले कारक

28.4.2 सामाजिक आंदोलन और सामाजिक परिवर्तन

28.5 सामाजिक प्रणालियों में आमूल परिवर्तन: विकासात्मक सार्विकीय तत्व

28.5.1 आदिम अथवा प्राचीन समाज

28.5.2 मध्यवर्ती समाज

28.5.3 आधुनिक समाज

28.6 सारांश

28.7 शब्दावली

28.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

28.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

28.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपके लिए संभव होगा

- पार्सन्स की प्रकार्यवाद की अवधारणा की व्याख्या करना
- प्रकार्यवाद एवं सामाजिक परिवर्तन के संबंधों का विवेचन करना
- सामाजिक प्रणालियों के भीतर होने वाले परिवर्तनों पर प्रकाश डालना
- पार्सन्स द्वारा दिए गए विकासात्मक सार्विकीय तत्वों अथवा सामाजिक प्रणालियों में, आमूल परिवर्तनों का विवरण देना।

28.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई (इकाई 27) में आपको टालकट पार्सन्स द्वारा प्रतिपादित सामाजिक प्रणाली की अवधारणा की जानकारी दी गई थी। इस इकाई में प्रकार्यवाद एवं सामाजिक परिवर्तन की उसकी अवधारणा की व्याख्या की जा रही है। पार्सन्स ने सामाजिक परिवर्तन के दो प्रकारों को उल्लेख किया है। एक है सामाजिक प्रणाली के भीतर होने वाला परिवर्तन और दूसरा है सामाजिक प्रणालियों का परिवर्तन। हमने दन दौनों प्रकार के सामाजिक परिवर्तनों की व्याख्या की है। भाग 28.2 में पार्सन्स की प्रकार्यवाद की अवधारणा तथा भाग 28.3 में प्रकार्यवाद और सामाजिक परिवर्तन के संबंधों का विवेचन किया गया है। भाग 28.4 में सामाजिक प्रणालियों के भीतर होने वाले परिवर्तन के बारे में तथा भाग 28.5 में पार्सन्स द्वारा प्रतिपादित विकासात्मक सार्विकीय तत्वों के माध्यम से सामाजिक प्रणालियों में आमूल परिवर्तनों के बारे में बताया गया है।

28.2 पार्सन्स की प्रकार्यवाद की अवधारणा

पार्सन्स के अनुसार सामाजिक प्रणाली की स्थिरता केवल समाज द्वारा अपने सदस्यों पर लागू किए गए नियम-मर्यादाओं तथा सरकार द्वारा अपने नागरिकों पर लागू किए गए सामाजिक नियंत्रण के अन्य उपायों के माध्यम से ही नहीं, बल्कि समाज के सदस्यों द्वारा समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से सामाजिक मूल्यों, अपेक्षित आचार पद्धतियों तथा सामाजिक अस्तित्व की संहिताओं को आत्मसात करके कायम की जाती है। बच्चा विभिन्न सामाजिक संस्थाओं तथा भूमिकाओं के वांछित एवं वर्जित, दोनों तरह के मूल्यों तथा प्रतिमानों के संबंध में अपने परिवार तथा पड़ोस के वातावरण से ही सीखता है। बड़ा होने पर वह स्कूल, कॉलेज तथा काम के स्थानों पर अन्य सामाजिक मूल्यों एवं वांछित आचार-पद्धतियों को सीखता और अपनाता है।

पिछली इकाई में आपने पार्सन्स की सामाजिक प्रणाली की प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षाओं की अवधारणा के बारे में भी पढ़ा होगा। पार्सन्स के मतानुसार अनुकूलन (adaptation), लक्ष्यप्राप्ति (goal-orientation), एकीकरण (integration) तथा विन्यास अनुरक्षण (latency) जैसी ये पूर्वापेक्षाएं किसी भी सामाजिक प्रणाली के अस्तित्व के लिए आवश्यक प्रतिक्रियाएं हैं। सामाजिक प्रणाली का अस्तित्व बनाए रखने में संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं के योगदान को पार्सन्स ने प्रकार्यात्मक माना है।

प्रकार्यवाद इस दृष्टिकोण को व्यक्त करता है कि सभी सामाजिक प्रणालियों की अभिवृत्ति तत्वों (अंग) के रूप में ऐसी प्रक्रियाओं और संस्थाओं को विकसित एवं एकीकृत करने की है जो उसे बनाए रखने में सहायक होती है। सामाजिक प्रणालियां बुनियादी तौर पर इन इकाइयों को अपने अंगों के रूप में विकसित करती रहती हैं और ये इकाईयां प्रक्रियाओं(पार्सन्स के अनुसार अनुकूलन, लक्ष्य-प्राप्ति, एकीकरण तथा विन्यास अनुरक्षण) और संस्थाओं जैसे कि सरकार, अर्थव्यवस्था, विद्यालय, अदालत आदि के रूप में हो सकती हैं जो प्रणाली को बनाए रखने के उद्देश्य को लेकर काम करती हैं। इन प्रक्रियाओं तथा संस्थाओं के संचानल के परिणामों की उद्देश्यता को **टीलियोलॉजी** (teleology) का नाम दिया गया है जो प्रकार्यवाद का अनिवार्य गुण है। यह मानव शरीर की जैविक प्रणाली के समान काम करता है। मानव शरीर में श्वसन क्रिया, रक्त संचार, नियमित तापक्रम आदि प्रक्रियाओं का उद्देश्य शरीर को स्वस्थ बनाए रखना है। ये प्रक्रियाएं टीलियोलॉजिकल अथवा उद्देश्य निहित है।

साधारण शब्दों में कहा जा सकता है कि टीलियोलॉजी ऐसी व्याख्या है जिसका अभिप्राय सुनिश्चित उद्देश्य से होता है। उदाहरण के लिए यह तर्क देना उद्देश्यपूर्ण होगा कि फल और बीज(खाद्य पदार्थ) इसीलिए विद्यमान हैं कि पशु-पक्षी उनका पोषण करके जीवित रह सकें अथवा बंदरों की लंबी पूंछ का प्रयोजन यही है कि वे आसानी से एक पेड़ से दूसरी पेड़ तक छलांग लगा सकें (देखिए कोष्ठक 28.01: टीलियोलॉजी)।

कोष्ठक 28.01: टीलियोलॉजी

प्रकार्यवाद की आलोचनाओं में से प्रकार्यवाद का टीलियोलॉजिकल स्वरूप होना, उसकी एक तर्कसंगत आलोचना है। जैसा कि आपको मालूम है कि इसका अभिप्राय उस दृष्टिकोण से है जिसमें विकास उन्हीं उद्देश्यों के कारण होते है, जिनकी वे सिद्धि करते हैं। अत: इस व्याख्या के अनुसार परिणाम (effect) को कारण (cause) के समान समझा जाता है। प्रकार्यवादी सिद्धांत में यही मुख्य एतराज़ है। उदाहरण के लिए इस सिद्धांत के अनुसार समाज में धर्म इसीलिए होता है कि वह समाज की नैतिक व्यवस्था को बनाए रखे। इस स्थिति में धर्म जो कि एक परिणाम है, उसकी व्याख्या कारण के रूप में दी गई है परंतु वास्तव में कारण नैतिक व्यवस्था है (प्रकार्यवाद की आलोचना के लिए देखिए पुस्तक - कोहेन 1968, अध्याय 3)।

प्रकार्यवाद का टीलियोलॉजिकल स्वरूप इसकी तर्कसंगत आलोचना क्यों है? यह प्रकार्यवाद की तर्कसंगत आलोचना इसलिए है क्योंकि इसमें परिणाम, जो कि बाद में आता है, उससे कारण की व्याख्या की जाती है, जबकि कारण परिणाम से पहले होता है। यह तर्क के क़ानूनों के विरूद्ध है। उदाहरण के लिए यह कहना कि "क" कारक से "ख" कारक पैदा होता है अत:, "ख" कारक का विद्यमान होना "क" कारक की विद्यमानता को दर्शाता है। प्रकार्यवादी विचारधारा के समाजशास्त्री, जैसे कि दर्खाइम और अन्य, प्रकार्यवाद की त्रुटियों से अवगत थे और उन्होंने इनको सही करने का प्रयास भी किया।

मानव शरीर की महत्वपूर्ण क्रियाओं का उद्देश्य शरीर का जीवित बने रहना है और यदि किसी बाहरी तत्व से शरीर को ख़तरा होता है तो उसकी आंतरिक प्रणाली तुरंत शरीर के बचाव में सक्रिय हो जाती है और जब तक वह ख़तरा नहीं टलता यह सक्रियता जारी रहती हैं। इस प्रकार की प्रक्रियाएं शरीर में आत्म-नियामक भूमिका (self regulatory role) निभाती हैं। इसे होमोस्टेसिस (homeostasis) कहते हैं (देखें अनुभाग 28.7 शब्दावली में इस शब्द का अर्थ)।

प्रकार्यवाद का अर्थ है कि सामाजिक प्रणालियां मानव शरीर की जैविक प्रणाली के समान हैं। इन प्रणालियों में सामाजिक प्रक्रियाएं तथा संस्थाएं वही काम करती हैं तथा सामाजिक प्रणालियों को जीवित रखने के उद्देश्य को लेकर उसी प्रकार चलती हैं, जिस प्रकार मानव, शरीर में प्रकार्यात्मक प्रक्रियाएं काम करती हैं। सामाजिक प्रणाली और मानव शरीर दोनों में आत्म-नियामक क्रियाविधि होती है, जिससे उनमें स्थिरता बनी रहती है और बाहरी ख़तरों से उनका बचाव होता है। इस तरह की संतुलन-क्षमता को होमोस्टेसिस कहते हैं। किंतु इनमें एक अंतर है कि मानव शरीर मनुष्य की सभी प्रजातियों में एक समान होता है, जबकि सामाजिक व्यवस्थाएं इतिहास की उपज होती हैं। पार्सन्स का मानना है कि सामाजिक प्रणालियों के स्वरूप तथा शैलियों में बहुत भिन्नताएं हैं। मानव शिशु की सुघट्यता (plasticity) में यह तथ्य प्रकट होता है, जिनका विकास अन्य जीवों के समान आचरण की एक जैसी विशेषताओं के साथ नहीं होता। विभिन्न भाषाएं सीखने के साथ जिन समाज अथवा समूहों में उनका जन्म होता है, उनके तरह-तरह के सांस्कृतिक मूल्यों एवं आचार-विचारों के अनुकूल वे ढलते हैं। उनमें अनेक भाषाओं, सांस्कृतिक शैलियों आदि को अपनाने की क्षमता होती है। मनुष्य अन्य जीवों की तरह पूर्व-निर्धारित सहज प्रवृत्तियां लेकर जन्म नहीं लेते। मानव-शिशु की समाजीकरण की प्रक्रिया तथा उसकी व्यक्तित्व प्रणाली संबंधित सामाजिक प्रणाली के सामाजिक आचार-विचार तथा मूल्यों के आत्मसात् के माध्यम से सामाजिक प्रक्रिया की स्थिरता और एकता को बनाए रखती है। इसके अतिरिक्त, मनुष्य संस्कृति और समाज से सीखने के साथ-साथ संस्कृति की नई शैलियां विकसित करने तथा उन्हें मौजूदा शैलियों में समन्वित करने में भी सक्षम हैं।

28.3 प्रकार्यवाद और सामाजिक परिवर्तन

प्रकार्यवाद की उपर्युक्त विशेषताओं से हमें यह आभास हो सकता है कि इसका संबंध सामाजिक प्रणाली की निरंतरता एवं अनुरक्षण मात्र से है। इसमें सामाजिक परिवर्तन की धारणा नहीं है। वास्तव में अनेक समाजशास्त्रियों ने प्रकार्यवाद की केवल इसलिए आलोचना की है कि इसमें सामाजिक प्रणाली के उस पहलू पर आवश्यकता से अधिक बल दिया जाता है, जिसके फलस्वरूप स्थिरता एवं निरंतरता बनी रहती हैं। उनका यह भी कहना है कि प्रकार्यवाद बुनियादी मूल्यों, विश्वासों, आचार-पद्धतियों या सामाजिक समस्याओं के प्रति दृष्टिकोण के मामले में व्यापक सहमति या सर्वानुमति से चलता है। यह आलोचना उस प्रकार्यवादी दृष्टिकोण पर आधारित है, जो कि यह विश्वास करता है कि समाज के सदस्य समाज विशेष में अपनी समूची बाल्यावस्था में एक ही तरह के मूल्यों और विश्वासों से परिचित रहते हैं।

पार्सन्स ने संबंधित सामाजिक प्रणालियों की प्रकार्यात्मक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप सामाजिक प्रणाली में स्थिरता तथा मूल्य सहमति के तत्व के प्रवेश से इनकार नहीं किया। परंतु उसने सामाजिक परिवर्तन की संभावनाओं की भी कल्पना की थी। यह सामाजिक प्रणाली के विशिष्ट स्वरूप तथा प्रेरक प्रवृत्तियों के स्वरूप का परिणाम होता है, जो कि समाज में सदस्यों की कार्य-व्यवस्थाओं को संगठित करते हैं। पहला स्वरूप सामाजिक प्रणालियों को पारिस्थितिकीय संसाधनों और भौतिक एवं पर्यावरण परिस्थितियों जैसा बाह्य सीमवर्ती स्थितियों तथा सांस्कृतिक संपर्क एवं विचारों और हितों के प्रसार जैसे ऐतिहासिक पहलुओं एवं इन ऐतिहासिक पहलुओं के कारण उत्पन्न सामाजिक दबावों के साथ जोड़ता हैं । दूसरा स्वरूप इसे कार्य-प्रणालियों में अभिप्रेरक तत्वों से जोड़ता है, जो अपने स्वरूप में अनिवार्यत: निर्देशात्मक (directional) है। उद्देश्यों तथा मूल्यों के उन्मुखीकरण की दिशा सामाजिक प्रणाली में सामंजस्य और तनाव, दोनों को जन्म देती है। सामजस्य से स्थिरता आती है और तनाव से परिवर्तन होता है। पार्सन्स ने दो स्तरों पर सामाजिक परिर्वतन की कल्पना की है। पहला सामाजिक प्रणाली के भीतर की प्रक्रियाओं से उभरने वाला परिवर्तन और दूसरा है सामाजिक प्रणाली में आमूल परिवर्तन की प्रक्रियाएं।

पार्सन्स के अनुसार, सामाजिक परिवर्तन के दोनों पहलुओं पर ध्यान देने के लिए सामाजिक विज्ञानों में अभी तक कोई निश्चित सिद्धांत विकसित नहीं हो पाया है, किंतु समाजशास्त्र अपने विश्लेषण को दो पहलुओं तक सीमित रखकर सामाजिक परिवर्तन को समझने की समस्या हल कर सकता है। पहला यह कि परिवर्तन का अध्ययन अवधारणात्मक श्रेणियों अथवा प्रतिरूपों (paradigms) की सहायता से किया जाए। अवधारणात्मक श्रेणियां जिन्हें पार्सन्स ने सामाजिक परिवर्तन के विश्लेषण के लिए महत्वपूर्ण माना है, वे हैं अभिप्रेरणात्मक और मूल्यपरक उन्मुखता तथा सामाजिक प्रणाली की प्रकार्यात्मक पूवपिक्षाएं (इस खंड की इकाई 27 के भाग 27.6 में आपको इसके बारे में जानकारी दी गई है)। पार्सन्स के अनुसार, दूसरा पहलू यह है कि सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन सामान्य स्तर पर नहीं किया जाना चाहिए, जो सभी समाजों पर समान रूप से लागू हो, बल्कि विशिष्ट ऐतिहासिक स्तर पर किया जाना चाहिए। इसलिए पार्सन्स का यह मत है कि समाजशास्त्रियों के लिए समग्र सामाजिक प्रणाली के परिवर्तन की प्रक्रियाओं की तुलना में सामाजिक प्रणाली के भीतर के परिवर्तन का अध्ययन करना सरल है।

पार्सन्स का मुख्य योगदान विभिन्न स्थितियों में सामाजिक प्रणाली के भीतर होने वाले परिवर्तन का अध्ययन है, किंतु उसने समग्र सामाजिक प्रणालियों में परिवर्तन का विश्लेषण करने का, विशेषकर विकासात्मक सार्विकीय तत्वों की अपनी अवधारणा के माध्यम से प्रयास भी किया है, जिसका विकास उसने अपने जीवन के बाद के वर्षों में किया था। हमने सामाजिक परिवर्तन में पार्सन्स के योगदान का अध्ययन इन दोनों स्तरों पर किया है। इसकी चर्चा अगले भाग में की जाएगी।

परंतु, अगले भाग को पढ़ने से पूर्व बोध प्रश्न 1 को पूरा करें।

बोध प्रश्न 1

i) प्रकार्यवाद की अवधारणा की व्याख्या लगभग छः पंक्तियों में कीजिए।

.....

.....

.....

.....

ii) टीलियोलॉजी (teleology) से क्या अभिप्राय है? चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

iii) निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थान भरिए।

क) मानव शरीर के विपरीत, जो मनुष्य की सभी प्रजातियों में एक समान है, सामाजिक प्रणालियां ..... उपज हैं।

ख) अभिप्रेरणाओं तथा मूल्यों के उन्मुखीकरण की दिशा सामाजिक प्रणाली में ..... और ..... दोनों को जन्म देती है। पहले से स्थिरता आती है और दूसरा ..... का कारण बनता है।

28.4 सामाजिक प्रणालियों के भीतर परिवर्तन

सामाजिक प्रणालियों के भीतर होने वाले सामाजिक परिवर्तनों की पार्सन्स की व्याख्या में प्रकार्यवाद के तत्व सुस्पष्ट दृष्टिगत हैं। उसने जैविक जीवन चक्र में होने वाले परिवर्तनों से सामाजिक प्रणालियों के भीतर होने वाले परिवर्तनों की तुलना की है, किंतु इस तुलना में एक अंतर बताते हुए पार्सन्स ने कहा है कि सामाजिक प्रणालियां सांस्कृतिक पहलुओं से संचालित होती हैं, जो जीव विज्ञान से पर्याप्त भिन्न हैं। फिर भी, विकास, विभेदीकरण और आत्म-अनुरक्षण की जो प्रवृत्ति हमें जैविक प्रणालियों के भीतर परिवर्तन की प्रक्रियाओं में दिखाई देती हैं, वही काफ़ी हद तक सामाजिक प्रणाली के भीतर चलती है। इसके अतिरिक्त अन्य संस्कृतियों के संपर्क से प्रणाली के भीतर नई सांस्कृतिक नवीनताओं तथा नए मूल्यों एवं जीवन-शैलियों में विसरण होता है और प्रणाली के भीतर भी परिवर्तन होते हैं।

सामाजिक प्रणाली के भीतर परिवर्तन की प्रक्रिया से जुड़ा एक प्रमुख कारण है जनसंख्या में वृद्धि, उसका घनत्व एवं एकत्रीकरण। मनुष्य के माध्यम से खाद्य संसाधनों तथा उत्पादन प्रौद्योगिकी पर दबाव बढ़ता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि अतीत में बृहत् सामाजिक प्रणालियों जैसे कि बड़े समुदायों, नगरों तथा राजनीति के संगठित रूपों का विकास नदी की घाटियों के समीप और उपजाऊ ज़मीनों पर हुआ है, जहां बड़ी मात्रा में अनाज पैदा हो सकता था। इस वृद्धि से जनसंख्या में वृद्धि हुई तथा सामाजिक प्रणाली के भीतर श्रम-विभाजन, शहरों का विकास तथा भारत में जाति व्यवस्था एवं यूरोप में गिल्ड आदि सामाजिक संगठन जैसे बड़े सामाजिक परिवर्तन हुए। पार्सन्स के अनुसार ये पविर्तन सरलता से नहीं होते, बल्कि हमेशा ही पिछले तथा वर्तमान संबंध-विन्यासों, मूल्यों तथा हितों के बीच टकराव पैदा होने के कारण प्रणाली में पुन: संतुलन कायम करने की आवश्यकता के माध्यम से आते हैं। पार्सन्स का कहना है, "विन्यास का रूपांतरण मात्र परिवर्तन नहीं है, बल्कि विरोध पर विजय द्वारा रूपांतरण को परिवर्तन कहा जाता है।" विरोध पर विजय पाने से पार्सन्स का अभिप्राय है सामाजिक प्रणाली में तनाव अथवा द्वंद्व का समाधान करना।

पार्सन्स के अनुसार, प्रत्येक सामाजिक प्रणाली में कुछ समय बाद विभिन्न प्रकार के निहित स्वार्थ जड़ें जमा लेते हैं, क्योंकि वह प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षाओं (अनुकूलन, लक्ष्य प्राप्ति, एकीकरण एवं विन्यास अनुरक्षण) के अनुरूप स्वयं को संयोजित कर लेती है। प्रणाली के भीतर से नए विचारों की मांगों, प्रौद्योगिकी में परिवर्तन की आवश्यकता अथवा प्रणाली पर जलवायु या पारिस्थितिकी में परिवर्तन अथवा महामारी जैसे बाहरी तत्वों के दबाव के कारण सामाजिक प्रणालियों को अपने निहित स्वार्थों को छोड़कर नए चिंतन, विचारों, प्रौद्योगिकी, कार्य-पद्धति, श्रम-विभाजन आदि को अपनाना पड़ता है। इसके फलस्वरूप सामाजिक प्रणाली का पुराना संतुलन बिगड़ जाता है और उसके स्थान पर नया संतुलन लाया जाता है। इन दो छोरों के बीच सामाजिक प्रणालियों के भीतर

अनुकूलन की लंबी प्रक्रियाएं चलती हैं, जिनके द्वारा नए विचार, नई कार्यपद्धतियां लोगों के लिए स्वीकार्य बनाई जाती हैं। पार्सन्स ने इस प्रक्रिया को संस्थागत होना (institutionalisation) कहा है। नई भूमिकाओं, संगठनों के नए प्रकारों, विज्ञान का विकास और धार्मिक विचार जैसे नए सांस्कृतिक संरूपों (cultural configurations) से सामाजिक प्रणाली में संतुलन की मौजूदा विधियों पर दबाव पड़ता है और अतिक्रमण होता है। सामाजिक संगठन के पुराने तत्वों पर नए तत्वों के अतिक्रमण के फलस्वरूप स्थापित निहित स्वार्थों के साथ संघर्ष एवं तनाव उत्पन्न होता है। पार्सन्स के अनुसार, किसी एक कारण से ही सामाजिक तनाव पैदा नहीं होते और न ही सामाजिक परिवर्तन का कोई एक मुख्य कारक होता है। किंतु सामाजिक तनाव सामाजिक विकास के उस बिंदु का प्रतीक है, जहां पर सक्रिय संपर्क प्रणालियों और प्रणाली की संस्थाओं तथा संरचनाओं (भूमिकाओं, प्रस्थितियों, व्यवसायों आदि) का पुराना संतुलन बिगड़ जाता है और नए संतुलन की दिशा में बढ़ने की प्रवृत्ति का सूत्रपात होता है।

28.4.1 परिवर्तन के लिए दबाव पैदा करने वाले कारक

पार्सन्स ने ऐसे कई पहलुओं का उल्लेख किया है, जो सामाजिक प्रणालियों में नया संतुलन स्थापित करने के लिए आवश्यक दबाव पैदा करते हैं। इनमें से कुछ कारक इस प्रकार हैं:

i) एक स्थान से दूसरे स्थान पर लोगों के सामूहिक रूप से चले जाने, प्रजातियों के अंतर्मिश्रणों (अंतर्समुदाय विवाह), उसके साथ-साथ लोगों की मृत्यु और जन्म दर में परिवर्तन आदि के माध्यम से जनसंख्या के जनसांख्यिकीय (demographic) स्वरूप में परिवर्तन, इन सभी कारकों से सामाजिक संरूप में बदलाव आता है।

ii) भौतिक वातावरण में परिवर्तन जैसे कि भौतिक संसाधनों (मृदा, जल, मौसम आदि की समाप्ति)। इससे भी सामाजिक प्रणाली में तनाव और परिवर्तन आ सकता है।

iii) सामाजिक प्रणाली के भीतर सदस्यों के लिए संसाधनों की उपलब्धता और खाद्य उत्पादन में वद्धि के कारण जनसंख्या में परिवर्तन

iv) प्रौद्योगिकी में परिवर्तन और समाज की प्रगति के लिए वैज्ञानिक जानकारी का उपयोग

v) नए धार्मिक विचार, अथवा धार्मिक मूल्यों तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी आदि के बीच एकीकरण जैसे नए "सांस्कृतिक संरूप" भी सामाजिक प्रणाली में परिवर्तन ला सकते हैं।

पार्सन्स का कहना है कि ये पहलू अपने आप में पूर्ण नहीं है किंतु उन अनेक तत्वों में से महत्वपूर्ण होने का संकेत देते हैं जो अपने अलग अस्तित्व के रूप में नहीं, बल्कि "परस्पराश्रित समूह" (interdependent plurality) हैं अर्थात् अनेक तत्व एक-दूसरे का सहारा लेकर सामाजिक प्रणाली के भीतर लाने के लिए काम करते हैं।

सांस्कृतिक तत्व मूल्यों और विश्वासों के **तर्कसंगतिकरण** तथा परंपरागत होने की सतत प्रक्रियाओं के द्वारा सामाजिक प्रणाली के भीतर परिवर्तन होते हैं। पार्सन्स ने तर्कसंगतिकरण की अवधारणा का प्रयोग वेबर की व्याख्या के अनुसार किया है, जिसका अभिप्राय है कार्य, व्यक्तिगत कर्त्तव्यों तथा सामाजिक संस्थानों के प्रति तर्कसंगत, व्यक्तिवादी और अभिनव दृष्टिकोण के क्रमिक विकास की प्रक्रिया। इसका अर्थ है राजा, पुजारी तथा नेता जैसे शासक लोगों की व्यक्तिगत सनक अथवा परंपरा अथवा रीति-रिवाज की बजाय उत्तरदायित्व के निर्धारण के कानूनी तथा औपचारिक उपायों में बढ़ोतरी। किंतु तर्कसंगतिकरण की प्रक्रिया के साथ साथ सामाजिक प्रणालियों में कुछ समय बाद मूल्यों को स्थायित्व प्रदान करने अथवा संस्थागत करने की प्रवृत्ति भी रहती है, जिससे निहित स्वार्थ उभर आते हैं। ये निहित स्वार्थ स्थितियों में परिवर्तन होने के बावजूद उन्हीं मूल्यों को जारी रखने पर बल देते हैं। ऐसा होने पर तार्किक मूल्यों में फिर से परंपरा का रूप आने लगता है। समाज तथा सामाजिक प्रणाली में तर्कसंगतिकरण और **परम्परागत होने की प्रक्रिया**

निरंतर चलती रहती है और पुराने मूल्यों के स्थान पर नए मूल्यों की परिकल्पना के माध्यम से तर्कसंगति करण के नए रूप उभरते हैं और इस प्रकार यह चक्र निरंतर गतिशील रहता है (देखें चित्र 28.1)।

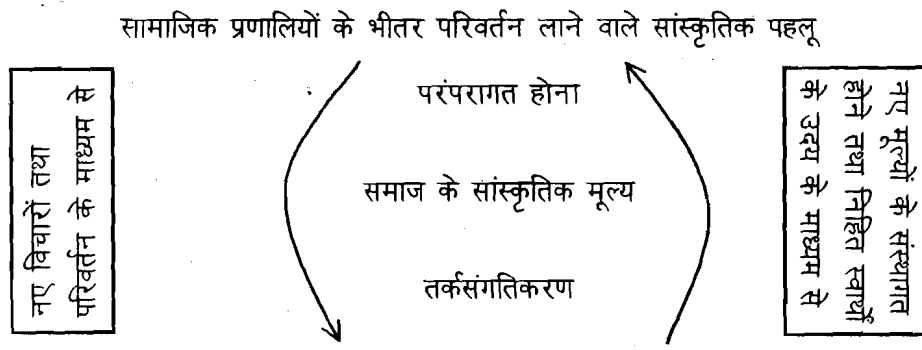

चित्र 28.1: सामाजिक प्रणाली के भीतर परिवर्तन का एक उदाहरण

पार्सन्स ने परिवार प्रणाली के उदारहणों से सामाजिक प्रणाली के भीतर परिवर्तन की क्रियाओं को स्पष्ट किया है। परिवार में उसके सदस्यों के जीवनचक्र में अंतर्निहित परिवर्तन के फलस्वरूप उसमें परिवर्तन होता रहता है। जन्म, बाल्यावस्था, प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था और मृत्यु की प्रक्रियाएं सभी परिवारों के अनिवार्य अंग है और इनमें से प्रत्येक प्रक्रिया ऐसे सामाजिक परिणाम लाती है जो परिवर्तन तथा पारिवारिक भूमिकाओं, सदस्यों के व्यवसाय, सत्ता, प्रस्थिति और मूल्यों एवं विश्वासों में नए समायोजन को आवश्यक बना देते हैं। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के मूल्यों तथा दृष्टिकोण में परिवर्तन परिवार प्रणाली के अंतर्निहित तत्व हैं। परिवार में निरंतरता तथा परिवर्तन ही इस प्रक्रिया की महत्वपूर्ण विधि है। बालक के समाजीकरण की यह प्रक्रिया बालक के व्यक्तित्व में प्रणाली के मूल्यों को स्थापित करती है, किंतु बड़ा होने पर उसी बालक को समाज की व्यापक प्रणालियों से अन्य मूल्य ग्रहण करने के लिए मिलते हैं। हो सकता है कि बड़ा होने पर उसकी नई भूमिकाएं और अपेक्षाएं बाल्यावसथा की भूमिकाओं एवं अपेक्षाओं से मेल न खाती हों। इस प्रकार, परिवार प्रणाली में स्थिरिता और परिवर्तन की अंतर्निहित प्रक्रियाएं हैं।

आइए इस बिंदु पर सोचिए और करिए 1 को पूरा कर आगे बढ़ा जाए।

सोचिए और करिए 1

उन भूमिकाओं पर ध्यान से विचार कीजिए, जो आपके द्वारा अपने परिवार में अदा की जाती हैं। अब इनकी तुलना उन भूमिकाओं से कीजिए, जो आपने बालक/बालिका के रूप में अपने परिवार में निभाई थीं।

अपने परिवार के सदस्य के रूप में अपनी भूमिकाओं तथा भूमिका अपेक्षाओं में परिवर्तन (अर्थात आपके विचार में परिवार के सदस्य आपसे क्या अपेक्षा रखते हैं।) पर एक पृष्ठ की टिप्पणी लिखिए। यदि संभव हो तो अपनी टिप्पणी की अपने अध्ययन केंद्र के अन्य विद्यार्थियों की टिप्पणियों से तुलना कीजिए।

इन परिवर्तनों को परिवार चक्र के अध्ययन द्वारा चित्रित किया जा सकता है। इस चक्र का एक पहलू शरीरिक विकास प्रक्रिया में बच्चे की भूमिका में परिवर्तन से संबंधित है। इससे बदलते हुए जैविक चक्र (उदाहरण के लिए बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था) में व्यक्ति के व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि इसके साथ भूमिका अपेक्षाएं बदल जाती हैं। पुराने शैक्षिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों के स्थान पर नए मूल्यों को आत्मसात् करना आवश्यक हो जाता है। समाजीकरण की जैविक प्रक्रिया निर्बाध नहीं होती, क्योंकि जीवन के एक चरण से दूसरे चरण में परिवर्तन में विरोध और चिंता का सामना करना पड़ता है। इससे नई भूमिकाओं तथा नए मूल्यों को सीखने के स्थान पर पुराने मूल्यों के संरक्षण की नई विधियां सामने आती हैं। इसलिए

समाजीकरण और शिक्षा की प्रक्रियाओं में पुरस्कार तथा दंड के माध्यम से सदैव भूमिका-अपेक्षाओं में हेर-फेर होती रहती है। बचपन में यह भूमिका मां-बाप निभाते हैं और बड़ा होने पर सामाजिक प्रतिबंधों की अपनी संरचना के द्वारा अपेक्षित भूमिकाओं के साथ सामाजिक प्रणाली अनुरूपता स्थापित करती है।

परिवार चक्र का दूसरा पहलू संरचनात्मक है। इसका निर्धारण परिवार के सदस्यों की संख्या में परिवर्तन से होता है। एकल परिवारों में सदस्यों की संख्या में वृद्धि से संयुक्त परिवार बन जाते हैं। परिवार का यह आकार प्रणाली के आंतरिक तथा बाहरी दोनों पहलुओं से प्रभावित हो सकता है। बाहरी पहलुओं में आर्थिक साधन, सम्पत्ति, व्यवसाय आदि शामिल किए जा सकते हैं। आंतरिक पहलू जन्म-दर तथा लिंग-अनुपात से निर्धारित होते हैं। ये दोनों पहलू एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।

28.4.2 सामाजिक आंदोलन और सामाजिक परिवर्तन

पार्सन्स ने सामाजिक प्रणाली के भीतर परिवर्तन का विवेचन निम्नलिखित दो स्तरों पर किया है।

i) पहला स्तर है **भूमिका के विभेदीकरण, समाजीकरण तथा संस्थागत** होने की प्रक्रियाओं तथा उनके दबावों के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन (परिवार प्रणाली के उदाहरण को देखिए)। इस प्रकार का परिवर्तन धीमा, सतत और स्वरूप में अंतर्निहित अनुकूलनपरक होता है। इस तरह के परिवर्तन की प्रक्रियाओं की श्रृंखला है: नवीनताएं अथवा तर्कसंगतिकरण, नवीनता का संस्थागत होना, नए संस्थागत अनुकूलन के आस पास निहित स्वार्थों का विकसित होना और अंततः नवीनता फिर से परंपरा बन जाती है। यह अनुकूलनपरक सामाजिक परिवर्तन की निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है।

ii) दूसरा है **क्रांतिकारी आंदोलन के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन,** इस प्रकार का सामाजिक परिवर्तन क्रांतिकारी आंदोलन के फलस्वरूप होता है जिसके कारण सामाजिक प्रणाली के संतुलन में अचानक अंतर आ जाता है। पार्सन्स ने इसके लिए साम्यवादी तथा नाज़ी आंदोलनों के उदाहरण दिए हैं। पार्सन्स के अनुसार इन आंदोलनों के ज़ोर पकड़ने तथा सामाजिक प्रणाली में महत्ता पाने से पहले समाज में चार प्रकार की स्थितियां अवश्य होनी चाहिए। ये स्थितियां नीचे दी जा रही हैं।

   क) लोगों में व्यापक रूप से फैली विलगता अथवा अलगाव की भावना; दूसरे शब्दों में, जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग मौजूदा प्रणाली से असंतुष्ट होना चाहिए।

   ख) विद्रोही (अथवा वैकल्पिक विपरीत पक्ष) उपसंस्कृति के संगठन की विद्यमानता; अन्य शब्दों में, ऐसी विपरीत विचारधारा की विद्यमानता जो मौजूदा विचारधारा से एकदम पृथक हो। इससे सामाजिक प्रणाली के प्रतिबंधों पर आचरण न करने और यहां तक कि खुली चुनौती देने में मदद मिलती है।

   ग) उपरोक्त स्थिति के परिणामस्वरूप क्रांतिकारी आंदोलन की सफलता के लिए आवश्यक तीसरी स्थिति होती है और वह है एक विचारधारा; विश्वासों के एक समुच्चय का विकास जिसे सफलतापूर्वक लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया जा सके और उसके मूल्यों, प्रतीकों तथा संस्थागत स्वरूप के औचित्य का दावा किया जा सके।

   घ) इस प्रकार के सामाजिक आंदोलन के लिए चौथी तथा अंतिम स्थिति है नए आंदोलन की विचारधारा को उचित सिद्ध करने तथा उसके समर्थन के लिए शासन की दृष्टि से सत्ता प्रणाली का संगठन करना तथा उसे क्रियात्मक रूप प्रदान करना। सोवियत संघ और चीन में साम्यवादी आंदोलन की सफलता ऐतिहासिक रूप से ऊपर बताई गई चारों स्थितियों की विद्यमानता और वैधता को दर्शाती है।

सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में क्रांतिकारी सामाजिक आंदोलनों का मुख्य परिणाम यह होता है कि

इससे सामाजिक प्रणाली में ऐसी रूपांतरण की प्रक्रिया शुरू हो जाती है जो कि अनुकूलन लाती है। पार्सन्स के अनुसार, इसका कारण यह है कि अधिकतर क्रांतिकारी विचारधाराओं में आदर्शलोक (utopian) का पुट रहता है। जब इन मूल्यों को लागू किया जाता है तो अनुकूलन संरचनाओं के विकास के लिए "रियायत की प्रक्रिया" अस्तित्व में आती है। विचारधारा जितनी क्रांतिकारी होगी, उस प्रकार की अनुकूलन संरचना तैयार करना उतना ही कठिन होगा। रूढ़िवादिता के प्रति विवशतापूर्ण रूझान होने लगता है। उदारहण के लिए, साम्यवादी आंदोलन में परिवार की संस्था को "बुर्जुआ पूर्वग्रह" अथवा सम्पत्ति के निजी स्वामित्व को एक बुराई की तरह माना गया। परंतु इन दोनों संस्थाओं अर्थात् परिवार और सम्पत्ति के निजी स्वामित्व को समाप्त करना व्यावहारिक धरातल पर संभव नहीं हुआ। इस प्रकार क्रांतिकारी विचारधाराओं में आदर्श एवं व्यवहार के बीच अंतर बना रहता है।

एक और बात यह है कि पार्सन्स के अनुसार सभी क्रांतिकारी आंदोलनों की संरचनाओं में द्वैधवृत्ति पाई जाती है। जैसे कि साम्यवादी आंदोलन में वर्ग तथा समतावाद के बीच। इसके अलावा, इस तरह के आंदोलनों के अनुयायियों में अपनी उपेक्षित आवश्यकता-स्थितियों को संतुष्ट करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है क्योंकि वे प्रणाली को "उनका" अर्थात् किसी अन्य का नहीं बल्कि "हमारा" अर्थात् अपना मानकर चलते हैं। प्रणाली पर अधिकार की भावना के कारण नेताओं में व्यक्तिगत अथवा सामूहिक आत्मतोष की प्रवृत्ति को बल मिलता है। आगे चलकर इसके कारण क्रांतिकारी सामाजिक आंदोलन की उग्रता कम हो जाती है। अंततः समय बीतने के साथ-साथ क्रांतिकारी आधार पर चलाया गया आंदोलन धीरे-धीरे "रूढ़िवादिता" की ओर बढ़ने लगता है। तब यहां भी पूर्व क्रांतिकारी समाजों की भांति, सदस्यों को अनुरूपता के विन्यास में समाजीकरण करने की प्रवृत्ति पैदा हो जाती है, जिस प्रकार अन्य किसी भी सामान्य सामाजिक प्रणाली में होता है। पार्सन्स का मत है कि इस प्रकार क्रांतिकारी सामाजिक आंदोलन भी, जो सामाजिक प्रणाली में मूल परिवर्तन लाने का दावा करते हैं, अंततः सतत परिवर्तन की बजाए प्रणाली की स्थिरता की आवश्यकताओं के अनुसार अनुकूलन परिवर्तन की प्रक्रिया अपनाने लगते हैं। इस प्रकार के क्रांतिकारी आंदोलनों का प्रारंभ तो परंपरा के विरोध से होता है, किंतु उनका अंत रूढ़िवाद में होता है।

सामाजिक प्रणाली के भीतर परिवर्तन की इस चर्चा के बाद सामाजिक प्रणालियों में आमूल परिवर्तन की चर्चा अगले भाग में होगी। अगले भाग को पढ़ने से पहले बोध प्रश्न 2 को पूरा करें।

बोध प्रश्न 2

i) जनसंख्या सामाजिक प्रणाली के भीतर परिवर्तन लाने का प्रमुख पहलू है। लगभग दस पंक्तियों में विवेचन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

ii) उन कारकों का विवेचन कीजिए, जो सामाजिक प्रणालियों पर उस दबाव का सृजन करते हैं, जिससे नया संतुलन उभरता है। अपना उत्तर बारह पंक्तियों में दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

iii) निम्नलिखित कथनों में सही कथन पर (✓) का चिन्ह लगाइए।

क) तर्कसंगतिकरण वह प्रक्रिया है, जिसमें नए मूल्य, विश्वास, दृष्टिकोण आदि संस्थागत होते हैं ( )

ख) तर्कसंगतिकरण कार्य, व्यक्तिगत कर्त्तव्यों तथा सामाजिक संस्थाओं के प्रति तर्कपूर्ण, व्यक्तिवादी और नवीन दृष्टिकोण के क्रमिक विकास की प्रक्रिया है ( )

ग) तर्कसंगतिकरण वह प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति अपने समाज के मूल्यों, विश्वासों और रीतियों को आत्मसात् करते हैं। ( )

28.5 सामाजिक प्रणालियों में आमूल परिवर्तन: विकासात्मक सार्विकीय तत्व

आपने अभी तक सामाजिक परिवर्तन के बारे में पार्सन्स के उन विचारों का अध्ययन किया है जो मुख्यतया उसकी प्रारंभिक पुस्तक *द सोशल सिस्टम* (1951) में प्रतिपादित किए गए हैं। अपनी बाद की पुस्तकों विशेषकर *सोसायटीज़: एवल्युशनरी एंड कैम्पेरेटिव पर्सपेक्टिव्स* (1966), *द सोशियोलॉजिकल थ्योरी एण्ड माडर्न सोशियोलॉजी* (1967), *द सिस्टम ऑफ मार्डन सोसायटीज़* (1971) और *द इवोलूशन ऑफ सोसायटीज़* (1977) में पार्सन्स ने सामाजिक परिवर्तन के विकासात्मक सिद्धांत का विस्तृत विवेचन किया। परंतु सामाजिक परिवर्तन के प्रति उसका दृष्टिकोण मुख्यतया प्रकार्यात्मक रहा अर्थात् वह तब भी यही मानता था कि परिवर्तन की सभी प्रक्रियाएं लंबे समय तक प्रणाली को बनाए रखने के लिए विभेदीकरण और अनुकूलन के प्रति दबावों से पैदा होती है। किंतु पार्सन्स ने दो नए कारक भी प्रस्तुत किए, जो इस प्रकार हैं:

i) उसने **"विकासात्मक सार्विकीय तत्वों"** (evolutionary universals) की अवधारणा का प्रतिपादन किया, जिसका अर्थ है कि यदि हम समाजों में एक लंबे अंतराल का परिवर्तन देखें तो स्पष्ट होता है कि (अपनी संस्कृति और भौतिक वातावरण से बंधे होने के कारण) समाज की विशिष्ट ऐतिहासिक विशेषताओं के बावजूद प्रत्येक सामाजिक प्रणाली विकास की कुछ सामान्य दिशाओं से गुज़रती है। सामाजिक विकास की इस ऐतिहासिक प्रक्रिया के निर्देश और स्वरूप को पार्सन्स ने विकासात्मक सार्विकीय तत्व कहा है।

ii) सामाजिक परिवर्तन के प्रति पार्सन्स के विचारों में इस अवधि में एक और नया विचार सामने आया। इस विचार को इस तथ्य में देखा जा सकता है कि उसने सामाजिक प्रणालियों के विकासात्मक चरणों के प्रमुख प्रकारों का विश्व-स्तर पर ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक विश्लेषण करने पर बल दिया। इस विश्लेषण के माध्यम से मानव इतिहास के आदिम समाजों से लेकर आधुनिक औद्योगिक समाजों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया।

पार्सन्स के अनुसार, अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए किसी भी मानव समाज में निम्नलिखित अभिलक्षण होने चाहिए।

i) अर्थव्यवस्था का मूल स्वरूप, जिसमें मनुष्यों को जीवित रखने की व्यवस्था (भोजन एकत्र करना, शिकार, पशु-पालन तथा कृषि आदि) हो।

ii) प्राथमिक तकनीकी जिसके द्वारा खाद्य सामग्री का उत्पादन, आवास की व्यवस्था तथा पर्यावरण एवं अन्य ख़तरों से सुरक्षा हो सके

iii) बातचीत करने अथवा संप्रेषण के कुछ साधन, जिनसे परिवार से समुदाय स्तर तक सामाजिक एकात्मकता स्थापित हो सके और सामाजिक संगठन की देख-रेख की जा सके

iv) विश्वास प्रणाली (जीववाद, जीवात्मवाद, जादू-टोना, धर्म आदि) जिसके माध्यम से लोगों की सांस्कृतिक तथा अभिव्यक्तिपरक प्रेरणाओं को सामाजिक दृष्टि से संयोजित तथा समन्वित किया जा सके

v) इस प्रकार के समाजों के संचालन के लिए राजनीतिक संगठन का प्राथमिक रूप भी आवश्यक है। राजनीतिक प्रणाली जनजाति की मुखिया प्रथा अथवा समुदाय के सामूहिक नियमों के द्वारा नियंत्रण होने के सरल रूप में भी हो सकती है। अत: समाज के समन्वित अस्तित्व के लिए राजनीतिक संगठन का होना अनिवार्य है।

पार्सन्स ने समाजों का विकासात्मक वर्गीकरण तीन प्रकारों में किया i) आदिम अथवा प्राचीन समाज, ii) मध्यवर्ती समाज, iii) आधुनिक समाज, आइए अब तीनों की क्रमवार चर्चा करें।

28.5.1 आदिम अथवा प्राचीन समाज

सामाजिक संगठन की दृष्टि से ये समाज सर्वाधिक प्राथमिक है। सामाजिक विकास (social evolution) की प्रक्रिया ऊपर बताए गए पांच अभिलक्षणों के विकास की तरफ़ सामूहिक गतिशीलता द्वारा आगे बढ़ सकती है या इन प्राथमिक सामाजिक संस्थाओं में से किसी एक से प्रारंभ हो सकती है। उदाहरण के लिए, यह संभव है कि किसी एक आदिम समाज में तकनीकी में नवीनता के कारण समाज की अर्थव्यवस्था अथवा खाद्य उत्पादन की क्षमता में क्रांतिकारी परिवर्तन आ जाए। इस प्रकार, वह समाज अधिक लोगों का भरण-पोषण करने में सक्षम हो जाएगा। जनसंख्या वृद्धि से सामाजिक विभेदीकरण की प्रक्रिया का प्रारंभ होने लगता है, जो अनुकूलन और एकता के लिए नए दबावों तथा तनावों को जन्म देती है। एक अन्य समाज में परिवर्तन की मूल इच्छा किसी विश्वास प्रणाली से पैदा हो सकती है। जैसे कि, मायावी अथवा धार्मिक दृष्टिकोण लोगों को आर्थिक और तकनीकी प्रगति के नए अवसरों की खोज करने को प्रेरित कर सकते हैं। पार्सन्स ने सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को मानव समाजों में मौजूद अनुकूलन तनावों के दो मुख्य स्रोतों के साथ संबद्ध बताया है। इनमें से पहला है अस्तित्वपरक अथवा भौतिक तथा दूसरा है प्रतीकात्मक अथवा सांस्कृतिक। समाज में प्रतीकात्मक (symbolic) या सांस्कृतिक संस्थानों की मूल कार्य-कारण संबंधी प्रवृत्ति को पार्सन्स ने महत्व दिया। पार्सन्स का यह मत वेबर के उन विचारों से मेल खाता है जिनमें उसने पूंजीवाद के उदय में प्रोटेस्टेंट नैतिकता के योगदान की व्याख्या की है। परंतु साधारणतया अस्तित्वपरक (existential) और प्रतीकात्मक ये दोनों तत्व सामाजिक परिवर्तन के दौर से गुज़र रहे अधिकतर समाजों में एक-दूसरे को मज़बूत करते है।

आदिम अथवा प्राचीन समाज सामान्यतया वह समाज होता है जिसमें वर्गों तथा जातियों के बीच कोई विभाजन नहीं होता। इन समाजों में मुखियाओं को कुछ विशेषाधिकार अवश्य प्राप्त होते हैं, किंतु वे मुख्यतया सम्मानपरक ही होते हैं अर्थात् नेता को सम्मान प्राप्त होता है। उनकी जीवन-शैली में अन्य लोगों से कोई विशेष भिन्नता नहीं होती है।

आदिमकालीन समाजों में इस अनुकूलन परिवर्तन के उदाहरण कई विशिष्ट स्थितियों में देखे जा सकते हैं। परिवर्तन की प्रक्रिया के प्रतीकात्मक अथवा सांस्कृतिक माध्यमों को बिहार की मुंडा और बिरहोर जैसे जनजातीय समाजों में देखा जा सकता है, जहां ईसाई आंदोलन या देवी आंदोलन के माध्यम से यह प्रक्रिया प्रारंभ हुई है। जनजाति के किसी नेता या नेताओं के स्वरूप में देवी प्रकट होती है, जो लोगों के आचरण में अनेक सामाजिक सुधार लाने का आदेश देती हैं। जनजातीय समुदाय के हितों के लिए ख़तरा पैदा करने वाली ताकतों का मुकाबला करने के लिए प्राय: इस प्रकार के सुधार पहले से ही आवश्यक होते हैं। हो सकता है कि इन सुधारों का उदय विरोधी स्वभाव अथवा विरोधी बाहरी समुदायों अथवा वर्गों से हुआ हो। अनेक सरल समाजों में समाज की उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए नई तकनीक लागू करने के बहुत से उदाहरण मौजूद हैं। हज़ारों साल पहले, प्रारंभ में बीज बोने और हल चलाने की तकनीक भी इसी तरह प्रयोग में लाई गई थी।

28.5.2 मध्यवर्ती समाज

पार्सन्स के अनुसार आदिम चरण के पश्चात् दूसरा विकासात्मक सार्विकीय चरण है समाज का मध्यवर्ती प्रकार। समाज का यह प्रकार सामाजिक विभेदीकरण के दबाव के फलस्वरूप अस्तित्व में आता है। पार्सन्स के विचार में सामाजिक प्रणाली में इस तरह के दबाव का सर्वाधिक सामान्य कारण है जनसंख्या में वृद्धि। इससे समाज के आकार तथा रचना में बदलाव आता है। जैविक प्रणाली वाले समाजों में विभेदीकरण का स्वरूप दोहरे विभाजन का होता है अर्थात् इसमें इकाइयों के दो हिस्से हो जाते हैं। जैविक प्रणाली के समरूप सामाजिक प्रणाली में भी जनसंख्या वृद्धि के दबाव के कारण मानव बस्तियों का दोहरा विभाजन होता है और यह है शहरी तथा ग्रामीण। यह विभाजन और आगे बढ़ता हुआ व्यवसायों में विभेदीकरण लाता है, जिसमें अनेक प्रकार के कृषि से भिन्न व्यवसाय उभरते हैं यह इसलिए होता है क्योंकि कस्बों एवं शहरों के विकास के कारण आबादी के नए वर्गों का सृजन होता है। इसके अंतर्गत अतिरिक्त संपत्ति को नियंत्रित करने और सत्ता तथा ऊंची सामाजिक प्रस्थिति प्राप्त करने वाले लोगों, कारीगरों, शिल्पकारों, साहित्यकारों, पुजारियों, व्यापारियों, योद्धाओं आदि के अनेक वर्ग अस्तित्व में आते हैं।

विकास के दूसरे चरण में वर्ग के आधार पर अथवा जैसे कि भारत में है जाति के आधार पर सामाजिक विभेदीकरण प्रारंभ होता है। सामाजिक प्रणाली के स्वरूप में इस प्रकार के विकास के फलस्वरूप समाज के प्रशासन के लिए नए प्रकार के नियमों की आवश्यकता पड़ती है। समाज के इस चरण में पहले की भांति केवल रीतियों और प्रयासों से समाज का प्रबंध करना संभव नहीं रहता। इसलिए समाज के शासन के लिए और अधिक नियम अथवा कानूनी धाराएं संहिताबद्ध की जाती हैं और प्राय: ये लिखित रूप में होती हैं। ऐसी स्थिति में राजनीतिक प्रणाली अपेक्षाकृत अधिक व्यवस्थित रूप ग्रहण कर लेती हैं, जैसे कि सामंतवाद तथा राजतंत्र। परंतु पार्सन्स के अनुसार दो आधारभूत नई संस्थाएं विकास के मध्यवर्ती चरण में समाज को विशिष्ट स्वरूप प्रदान करती है और वे हैं:

i) सामाजिक स्तरण की व्यापक एवं जटिल प्रणाली का उदय, और

ii) समाज के सामाजिक नियंत्रण के सामान्य प्रतिमानों का उदय।

पार्सन्स के अनुसार इस प्रकार के समाजों के उदहारण हैं : भारत, चीन, इस्लामी साम्राज्य तथा रोमन साम्राज्य। इन ऐतिहासिक उदाहरणों के अतिरिक्त अधिकतर सामाजिक प्रणालियां सामाजिक विभेदीकरण और अपनी अनुकूलन आवश्यकताओं के कारण विकास की इस प्रक्रिया से गुज़रती हैं।

28.5.3 आधुनिक समाज

पार्सन्स के अनुसार समाजों के विकास की प्रक्रिया का तीसरा चरण है आधुनिक सामाजिक प्रणालियां। इस प्रकार के समाजों का उदय विकास के मध्यवर्ती चरण (जिसे समाजों का पूर्व-औद्योगिक चरण भी कहा जा सकता है) से अनेक प्रकार की सामाजिक संस्थाओं के विकास के माध्यम से हुआ। इस प्रक्रिया में प्रौद्योगिकी ने निश्चय ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। किंतु यह विकास पश्चिमी (यूरोपीय) समाज में हुई तीन प्रकार की क्रांतियों के कारण संभव हुआ। पार्सन्स के अनुसार, ये क्रांतियां मानवता के लिए पश्चिम की विशिष्ट देन हैं। यही कारण है कि पार्सन्स का यह विचार भी है कि समाज के आधुनिक चरण का विकास पूर्णतया पश्चिम के योगदान का परिणाम है और इस दिशा में पूर्व अर्थात् चीन या भारत जैसी किसी भी अन्य सभ्यता ने भूमिका नहीं निभाई।

पश्चिम (यूरोप) में परिवर्तन लाने वाली तीन क्रांतियां हैं : i) औद्योगिक क्रांति ii) फ्रांसीसी क्रांति के कारण आई लोकतांत्रिक क्रांति, और iii) शैक्षिक क्रांति। इस पाठ्यक्रम (ई.एस.ओ.-13) के खंड 1 की इकाई 1 में फ्रांसीसी क्रांति तथा औद्योगिक क्रांति के बारे में आपने पहले ही पढ़ा है। औद्योगिक क्रांति ऊर्जा के स्रोत भाप तथा बिजली के आविष्कार के फलस्वरूप आई। इससे परिवहन, व्यापार, समुद्री यात्रा द्वारा व्यापार, उत्पादन तथा बाज़ार-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन हुए। मध्यवर्ती समाज में ऊर्जा के मुख्य साधन के रूप में प्राणी-शक्ति का उपयोग किया जाता था। लेकिन आधुनिक समाज में कारखाने बन गए तथा इनमें भाप और बिजली का व्यापक स्तर पर इस्तेमाल होने लगा।

उत्पादन की कारखाना प्रणाली में शहरी और औद्योगिक विकास में योगदान मिला और समाज के आर्थिक एवं सामाजिक विकास में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की बढ़ती हुई भूमिका विकास का स्थायी तत्व बन गई। यह क्रांति यूरोप में लोकतांत्रिक क्रांति के साथ-साथ आई और उसे मज़बूत बनाने में भी सहायक सिद्ध हुई। इस संबंध में फ्रांसीसी क्रांति का विशेष योगदान रहा, जिसने समानता, विश्व बंधुत्व, स्वतंत्रता जैसे मूल्यों की स्थापना की और राजशाही की जड़ें खोदकर उसके स्थान पर निर्वाचित सरकार की लोकतांत्रिक प्रक्रिया का सूत्रपात किया। इंग्लैंड में भी सुधार आंदोलन तथा राजनीतिक आंदोलन द्वारा राजा की निरंकुश सत्ता छिन गई और शासन के अधिकार निर्वाचित जन-प्रतिनिधियों के हाथों में चले गए।

लोकतांत्रिक आंदोलन का एक क्रांतिकारी परिणाम नई सामाजिक प्रणाली के उदय के रूप में हुआ, जिसके अंतर्गत जन्म नहीं बल्कि व्यक्ति की योग्यता समाज में सम्मान और प्रतिष्ठा का आधार बन गई। औद्योगिक तथा लोकतांत्रिक क्रांतियों ने मिलकर सामाजिक परिवर्तन की नई प्रक्रिया की नींव डाली, जिससे अवसरों की उपलब्धता के विषय में लोगों को अधिक भागीदार तथा समानता मिलने लगी। किंतु यह सभी कुछ तीसरी क्रांतिकारी घटना के कारण संभव हुआ और यह है यूरोपीय समाज में शैक्षिक क्रांति।

यूरोप में शैक्षिक क्रांति का सृजन मूलत: शिक्षा को धर्म-स्थानों से पृथक करने और उसे निरंतर धर्म-निरपेक्ष तथा सार्वजनीन रूप देने के फलस्वरूप हुआ। शिक्षा की विश्वविद्यालय प्रणाली का उदय यूरोपीय समाज के सामाजिक तथा सांस्कृतिक इतिहास की बहुत बड़ी घटना सिद्ध हुई, क्योंकि विश्वविद्यालयों में धार्मिक तथा सांप्रदायिक धारणाओं से मुक्त होकर ज्ञान की वृद्धि के लिए पठन-पाठन तथा शोध, दोनों कार्य चल सकते थे। इस व्यवस्था ने ज्ञान की प्राप्ति तथा उसके प्रसार को सांप्रदायिक नियंत्रण से मुक्त करके उसे बिना किसी भेदभाव या पक्षपात के समूचे समाज अथवा मानव-मात्र के लिए उपलब्ध करा दिया। इसी प्रकार, प्राथमिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने अर्थात् समाज के सभी वर्गों एवं श्रेणियों में शिक्षा के प्रसार से पश्चिमी समाज में उच्च शिक्षा की नींव सुदृढ़ हो गई। इससे उस समाज में औद्योगिक तथा लोकतांत्रिक संस्थाएं और पुष्ट होने

लगीं। पार्सन्स के मत में औद्योगिक, लोकतांत्रिक एवं शैक्षिक क्रांतियां मानवता को पश्चिमी जगत की बेजोड़ देन हैं। इन तीन क्रांतियों के प्रभाव से समाज की आधुनिक प्रणाली का उदय हुआ। इनकी मुख्य विशेषताओं में हैं i) सार्विकीय कानूनों का विकास ii) धन तथा बैंकिंग की आधुनिक संस्थाओं का विकास iii) तर्कसंगत नौकरशाही का विकास, और iv) लोकतांत्रिक समाज का विकास (देखें चित्र 28.2)।

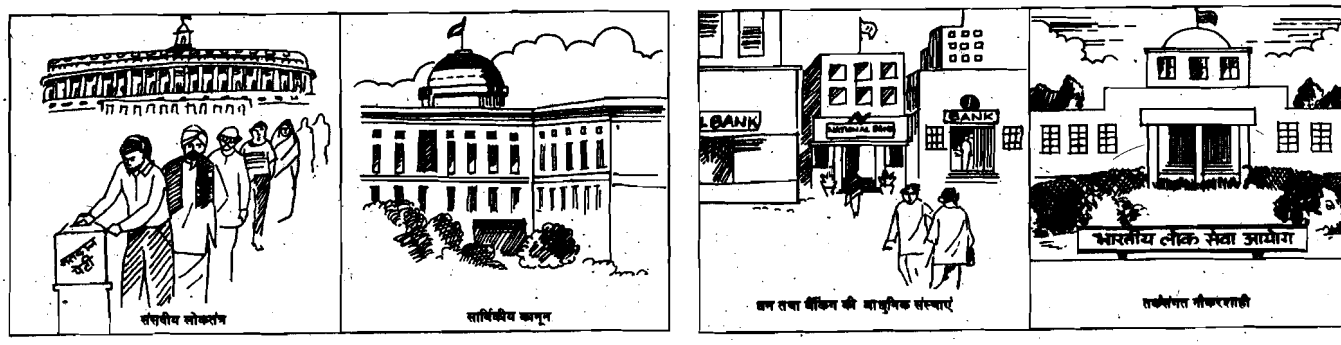

चित्र 28.2: आधुनिक समाज के लक्षण

पार्सन्स के अनुसार आधुनिक समाज में इन संस्थागत शर्तों या पूर्वापेक्षाओं का होना आवश्यक है। सार्विकीय कानून विश्व-बंधुत्व, और मानव की स्वतंत्रता के सिद्धांत पर आधारित हैं। इनसे धर्म, रंग, जन्म आदि का विचार किए बिना क़ानून को सभी मनुष्यों पर तर्कसंगत तथा एक-समान ढंग से लागू करना संभव हुआ है। इन सार्विकीय वैधानिक नियमों का मुख्य लक्षण है कि "मौलिक अधिकार या नागरिक अधिकार" अस्तित्व में आएँ और समाज के सभी लोगों को उपलब्ध हों। ये अधिकार सरकारी सत्ता का मनमाना प्रयोग नहीं होने देते और व्यक्ति की रक्षा करते हैं। इसी प्रकार, धन और बैंकिंग प्रणाली ने व्यापार एवं वाणिज्य को तर्कसंगत बनाया है और उसे सही अर्थों में विश्व-स्तर का स्वरूप प्रदान किया है। अब नगर या कस्बे की बाज़ार प्रणाली की बजाय विश्व बाज़ार प्रणाली की चर्चा की जाती है। इससे समाज की आर्थिक तथा औद्योगिक गतिविधियों का दायरा और व्यापक होता है। इस प्रक्रिया में तर्कसंगत नौकरशाही की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण रही है।

तर्कसंगत नौकरशाही की अवधारणा का उल्लेख सबसे पहले मैक्स वेबर ने किया। इसका अर्थ है परीक्षा द्वारा कार्यकारी अथवा सरकारी अधिकारियों का योग्यता के आधार पर चयन, जिम्मेदारियों का निश्चित निर्धारण और कानूनी जवाबदेही। दुरुपयोग किए जाने की स्थिति में अधिकारियों के बचाव का प्रावधान भी है। समानता, सार्वजनीनता तथा न्याय के सिद्धांत पर सार्वजनिक नीति को क्रियान्वित करने के लिए तर्कसंगत नौकरशाही का होना आवश्यक है। पार्सन्स का विचार है कि आधुनिक समाज ने धन एवं बैंकिंग अथवा नौकरशाही के विकास में भले ही बहुत ऊंचाइयां छू ली हों, परन्तु लोकतंत्र के बिना उसे आधुनिक समाज नहीं कहा जा सकता।

लोकतंत्र से उसका अभिप्राय है संसदीय लोकतंत्र, जिसमें भिन्न तथा विरोधी विचारधारा वाले अनेक राजनीतिक दलों के द्वारा लोगों को समाज की राजनीतिक प्रक्रियाओं में भाग लेने की स्वतंत्रता होती है। इस प्रकार के लोकतंत्र के बिना सार्विकीय वैधानिक प्रतिमानों या तर्कसंगत नौकरशाही की संस्थाएं अपने स्वरूप में भले ही अस्तित्व में हों, किंतु उनका व्यावहारिक अस्तित्व नहीं होता। पार्सन्स की राय है कि जैसे-जैसे समाज में आधुनिकता की अन्य विशेषताएं उभरने लगती हैं, एक समय आता है, जब लोकतांत्रिक सुधार करने का दबाव बढ़ जाता है और आधुनिक सामाजिक प्रणालियों का स्वरूप अंततः लोकतांत्रिक ही है।

पार्सन्स के अनुसार समय की दृष्टि से ऐतिहासिक अंतर अथवा असमानता भले ही रहे, फिर भी सामाजिक परिवर्तन की विकासात्मक प्रक्रिया तो समाज की आधुनिक प्रणाली का लक्ष्य

प्राप्त करने की दिशा में आगे बढ़ती रहेगी। सभी समाजों को "विकासात्मक सार्विकीय तत्वों" के संस्थागत होने की प्रक्रिया से गुज़रना होगा और समय के साथ-साथ इन समाजों में सार्विकीय वैधानिक प्रतिमानों, धन एवं बैंकिंग प्रणाली, तर्कसंगत नौकरशाही और अंततः लोकतंत्र की स्थापना होगी।

आइए, अब इकाई के अंत में बोध प्रश्न 3 को पूरा कर लें।

बोध प्रश्न 3

i) विकासात्मक सार्विकीय तत्वों से क्या अभिप्राय है? अपना उत्तर छः पंक्तियों में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ii) आधुनिक समाजों के विकास में तीन प्रकार की क्रांतियों की मुख्य भूमिका रही। चार पंक्तियों में इन क्रांतियों का परिचय दीजिए।

.....

.....

.....

.....

iii) आधुनिक सामाजिक प्रणाली के पार्सन्स द्वारा बताए गए मुख्य अभिलक्षणों का उल्लेख कीजिए। अपना उत्तर चार पंक्तियों में दीजिए।

.....

.....

.....

.....

28.6 सारांश

इस इकाई में आपने टालकट पार्सन्स की प्रकार्यवाद की अवधारणा के बारे में पढ़ा। प्रकार्यवाद तथा सामाजिक परिवर्तन के बीच संबंध का भी कुछ विस्तार से विवेचन किया गया है। इसके पश्चात् आपने पार्सन्स द्वारा बताए गए सामाजिक परिवर्तनों के दो प्रकारों की जानकारी प्राप्त की। पहला प्रकार है सामाजिक प्रणालियों के भीतर परिवर्तन और दूसरा है सामाजिक प्रणालियों में आमूल परिवर्तन। दूसरी तरह के परिवर्तन को पार्सन्स ने विकासात्मक सार्विकीय तत्वों की अपनी अवधारणा के माध्यम से स्पष्ट किया है। उसने समाज के विकास को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है। पहली श्रेणी है आदिम अथवा प्राचीन समाज, दूसरी है मध्यर्ती समाज और तीसरी श्रेणी है आधुनिक समाज।

28.7 शब्दावली

प्राचीन (archaic) वह समाज, जो प्राचीन है या पुराने ढंग का है।

प्रसार (diffusion)	सांस्कृतिक बातों, विचारों तथा वस्तुओं का विभिन्न संस्कृतियों के बीच संपर्क के माध्यम से प्रसार।
विकासात्मक सार्विकीय तत्व (evolutionary universals)	जब सामाजिक प्रणालियों पर लंबे समय के संदर्भ में विचार किया जाता है तो विकास के कुछ सामान्य निर्देश दिखाई देते हैं। इस ऐतिहासिक प्रक्रिया के स्वरूप को विकासात्मक सार्विकीय तत्व कहा जाता है।
होमोस्टेसिस	मानव शरीर को जीवित रखने और उसके अनुरक्षण के लिए श्वास-तंत्र, जैसे विभिन्न अंगों द्वारा महत्वपूर्ण कार्य किए जाते हैं। शरीर की इस आत्म-नियामक प्रक्रिया को होमियोस्टेसिस कहते हैं।
तर्कसंगतिकरण (rationalisation)	यह वो प्रक्रिया है, जिसके द्वारा कार्य, व्यक्तिगत कर्त्तव्यों तथा सामाजिक संस्थाओं के प्रति तर्कसंगत, व्यक्तिवादी और अभिनव दृष्टिकोण पनपता है।
टीलियोलॉजी	इसका अभिप्राय उस दृष्किोण से है कि विकास उन्हीं उद्देश्यों के कारण होते हैं जिनकी वे सिद्धि करते हैं।
परम्परागत होने की प्रक्रिया (traditionalsiation)	यह वो प्रक्रिया है, जिससे मूल्यों, विश्वासों, विचारों, दृष्टिकोणों आदि को समाजों में संस्थागत बनाया जाता है और उन मूल्यों को बनाए रखने के लिए निहित स्वार्थों का उदय होता है।

28.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

हैम्लिटन, पीटर 1983. *टालकट पार्सन्स* रूटलेज: लंदन और न्यूयॉर्क

पार्सन्स, टालकट 1966 *सोसायटीज़: एवल्यूशनरी एंड कम्पेरेटिव पर्सपेक्टिव* प्रेंटिस हाल: इंगलवुड क्लिफ एन. जे.

पार्सन्स, टालकट 1977 *द एवोल्यूशन ऑफ सोसायटीज़:* (प्रस्तावना संपा. द्वारा जैक्सन टॉबी) प्रेंटिस हाल: इंगलवुड क्लिफ

28.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) प्रकार्यवाद एक दृष्टिकोण है, जिसमें यह माना जाता है कि सभी सामाजिक प्रणालियों में प्रक्रियाओं तथा संस्थाओं जैसे तत्व अथवा अंग होते हैं, जिनसे प्रणाली जीवित रहती है और उसका अनुरक्षण होता है। यह दृष्टिकोण जीवविज्ञान से काफी प्रभावित है और इसमें समाज तथा जैविक प्रणाली की तुलना की गई है।

ii) टीलियोलॉजी का अभिप्राय उस विश्वास से है कि किसी संस्था या प्रक्रिया के अस्तित्व का उद्देश्य यह है कि वह सामाजिक प्रणाली को जीवित रखने के लिए कोई आवश्यक कार्य संपन्न करती है। प्रकार्यवाद के सिद्धांत में इस विश्वास का केन्द्रीय स्थान है।

iii) क) ऐतिहासिक

ख) सामंजस्य, तनाव, परिवर्तन

बोध प्रश्न 2

i) सामाजिक प्रणाली के भीतर परिवर्तन लाने में जनसंख्या का प्रमुख कारक है क्योंकि जनसंख्या में वृद्धि से सामाजिक विभेदीकरण अर्थात् श्रम विभाजन होता है। अधिक उत्पादन प्रौद्योगिकी पर दबाव बढ़ने से सामाजिक प्रणालियों की जटिलता बढ़ती है। यह तथ्य भारत में जाति व्यवस्था तथा यूरोप में गिल्ड प्रणाली के विकास के रूप में ऐतिहासिक तौर पर सिद्ध हो चुका है।

ii) सामाजिक प्रणाली में तनाव बढ़ाने वाले कारक इस प्रकार है:

   क) जब लोगों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर सामूहिक रूप से चले जाने, सामाजिक अंतर्मिश्रण आदि के माध्यम से जनसंख्या के जनसांख्यिकीय गठन में परिवर्तन होता है।

   ख) जब प्राकृतिक पर्यावरण जैसे कि मृदा, जल, मौसम आदि के स्तर में गिरावट या बदलाव आता है।

   ग) जब किसी सामाजिक प्रणाली में खाद्य उत्पादन की वृद्धि होती है और लोगों को अधिक संसाधन उपलब्ध होते हैं।

   घ) जब किसी समाज में इस्तेमाल हो रही प्रौद्योगिकी में बदलाव आता है और समाज की प्रगति के लिए वैज्ञानिक जानकारी काम में लाई जाती है।

   ड) जब "सांस्कृतिक सविन्यास" में परिवर्तन होता है, जिसमें नए धार्मिक मूल्य, विचारधाराएं, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी आदि शामिल होते हैं।

iii) ख)

बोध प्रश्न 3

i) प्रत्येक सामाजिक प्रणाली की अपनी विशिष्ट ऐतिहासिक विशेषताएं होती हैं। किंतु इस विशिष्टता के बावजूद लंबी अवधि के संदर्भ में उस पर विचार करने पर विकास के कुछ सामान्य निर्देश दिखाई देते हैं जिनसे होकर सभी सामाजिक प्रणालियां गुज़रती हैं। समाजों के विकास के इसी निर्देश तथा इस ऐतिहाकिक प्रक्रिया के स्वरूप को ही पार्सन्स ने विकासात्मक सार्विकीय तत्व कहा है।

ii) आधुनिक समाजों के विकास में जिन तीन प्रकार की क्रांतियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है,वे हैं: i) औद्योगिक क्रांति, ii) फ्रांसीसी क्रांति के नेतृत्व में हुई लोकतांत्रिक क्रांति, और iii) शैक्षिक क्रांति।

iii) आधुनिक सामाजिक प्रणाली के मुख्य अभिलक्षण इस प्रकार हैं: क) सार्विकीय कानूनों का विकास, ख) धन तथा बैंकिंग की आधुनिक संस्थाओं का विकास, ग) तर्कसंगत नौकरशाही का विकास, और घ) लोकतांत्रिक समाज का विकास